ओ३म्

अहल-ए-अरब का क़दीम मज़हब

(अरब निवासियों का प्राचीन धर्म)

लेखक :

श्री पण्डित ज्ञानेन्द्र देव जी सूफ़ी

(पूर्व मौलाना हाजी मौलवी अब्दुल रहमान साहिब)

प्रकाशक :

आर्य तर्क शालिनी सभा
चावड़ी बाजार, दिल्ली

1936

हिन्दी रूपान्तर :

डॉ० तुलसीराम

आर्य समाज, शक्ति नगर,
दिल्ली-110007

ओ३म्

अरब निवासियों का प्राचीन धर्म क्या था? यह एक जटिल प्रश्न हैं। इसके संबंध में इस्लाम के इतिहासज्ञ हमें केवल इतना बतलाते हैं कि वे मूर्तिपूजा करते थे। किन्तु उनकी मूर्तिपूजा किस प्रकार की थी इस प्रश्न का वे कोई ठीक और सप्रमाण उत्तर नहीं देते। उनकी मूर्तिपूजा का रूप क्या था? वह भारत में लगभग दो हजार वर्ष से प्रचलित मूर्तिपूजा जैसी थी अथवा प्राचीन मिश्र या यूनान की मूर्तिपूजा से प्रभावित थी। इस विषय पर इस्लाम के इतिहासकार कुछ भी नहीं कहते। हाँ पश्चिमी विद्वान जिन्होंने इस विषय में खोज की है और जिनके प्रयास इस दिशा में आज भी चल रहे हैं वे हम को बताते हैं कि अरब निवासी सेमिटिक हैं। जिसका अर्थ यह है कि अरब निवासियों का आर्य सभ्यता और संस्कृति से दूर का भी संबंध नहीं हैं। परिणाम यह कि वाशिंग्टन् महोदय ने अपनी पुस्तक लाइफ़ ऑफ् मोहम्मद् (मोहम्मद् साहब की जीवनी) में लिखा है कि इस्लाम के सिद्धान्तों और हज़रत मोहम्मद साहिब के विचारों के अध्ययन से यह प्रमाणित हो जाता है कि इस्लाम के प्रर्वतक और प्रचारक नि:सन्देह सेमिटिक सभ्यता के मानने वाले और उसी जाति से संबंध रखने वाले थे (पृष्ठ 82)।

वाशिंग्टन् महोदय के इस मत को जानकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि उन्होंने केवल किस्से कहानियों के आधार पर जो कि प्रकृत कुर्आन का अंग बन चुके हैं, यह धारणा बना ली कि अरब निवासी सेमिटि हैं - यद्यपि अरब निवासियों के पूर्वज वैदिक धर्म के मानने वाले रहे हैं और कुर्आन की शिक्षा और उसका स्रोत वैदिक धर्म है। कुर्आन विहित सभ्यता वेदिक है। यह तथ्य इस ट्रैक्ट से स्पष्ट हो जायेगा। कुर्आन का सूर-ए-फ़ातिहा जो कि कुर्आन की जान समझा जाता है वह एक वेद्मंत्र का शाब्दिक अनुवाद हैं।

शुरूअ अल्लाह के नाम से जो निहायत रहम वाला (दयावान्) मिहर्बान (1)। हर तरह की तारीफ (प्रशंसा) खुदा ही की हैं। जो सब संसार का पालनकर्ता है (2)। निहायत दयावान मिहर्बान हैं (3)। न्याय के दिन (क़यामत महाप्रलय्) का

मालिक (4)। हे खुदा! हम तेरी ही पूजा करते हैं और तुझी से मदद मांगते हैं (5)। हम को सीधी राह दिखला (6)। उन लोगों की राह जिन पर तूने कृपा की। न उनकी जिन पर तू गुस्सा हुआ और न भटके हुओं की (7)। रूकू।

कुरान में कई स्थानों पर आया है कि इस कुरान को उम्मुलकुतब एवम् कुतब-मकनून से नकल किया गया है जिसको पवित्रात्माओं (अर्थात् आर्यों) के अतिरिक्त कोई नहीं छू सकता। इस विषय की चर्चा विस्तार पूर्व किसी दूसरे ट्रैक्ट में करूँगा।

अब मैं यहाँ पर बहुत ही संक्षेप से इस्लाम की दो प्रचलित प्रथाओं की चर्चा करता हूँ। जिनको देखकर पाठक उसी निष्कर्ष पर पहुँचेंगे जिस पर मैं पहुँचा हूँ।

आर्य और सेमिटिक सभ्यता में सब से बड़ा अन्तर यह है कि जहाँ आर्य जाति अहिंसा (किसी जीव को दुःख न देना) को धर्म का मुख्यतम अंग मानती है वहां सेमिटिक जाति बलि (अर्थात् खुदा के नाम पर जानवरों का क़त्ल करना) को ईश्वर प्राप्ति का साधन समझती हैं। इस अन्तर के विषय में इस्लाम के एक सिद्धान्त की चर्चा हम यहां करेंगें जिससे स्पष्ट हो जायेगा कि इस्लाम और अरब की सभ्यता पर आर्य जात का कितना और कहाँ तक प्रभाव पड़ा था।

हमारे मुसलमान भाई जब हज के लिए जाते हैं तो उन्हें अरब की सीमा के अन्दर प्रवेश करने के लिये एक विशेष प्रकार के वस्त्र धारण करने पड़ते हैं। हिन्दुस्तान से जहाज़ के द्वारा प्रस्थान करने वाले हाजी जब जद्दा बन्दरगाह के निकट पहुँचते हैं तो समुद्र में एक छोटी सी पहाड़ी जिस को आम तौर पर 'लिमलिम' कहा जाता है उस के पास पहुँचकर सारे हाजी अपने वस्त्र बदलते हैं। इस नये परिधान में केवल दो चादरें होती हैं जिनमें एक को कटिवस्त्र के रूप में बाँध लिया जाता है और दूसरी को (अंगवस्त्र के रूप में) शरीर पर ओढ़ लेते हैं। किन्तु सिर को खुला रखते हैं और कोई सिला हुआ कपड़ा नहीं पहन सकते, केवल यही दो चादरें प्रयोग में लाते हैं। और इस चादर को शरीर पर धारण करने का भी एक विशेष तरीका हैं अर्थात्

दाहिने कन्धे के नीचे से निकाल कर बाएं कन्धे पर डाल लेते हैं। पूर्णरूपेण यही प्रकार हिन्दुस्तान में ब्रह्मचारियों का शरीर पर चादर डालने का है। इस प्रकार को 'अहराम' कहते हैं। प्रत्येक हाजी को अनिवार्य रूप से इसका पालन करना पड़ता हैं और उस समय तक वह इसका पालन करता रहता है जब तक कि वह हज के सम्पूर्ण कर्तव्यों से निवृत्त न हो जाये। हज एक तिथिविशेष को अर्थात् बक़र-ईद से एक दिन पहले अर्फ़ा के दिन प्रारम्भ होता हैं। कुरआन सूरा अलमाहिदा रूकू 13 (95) में आदेश है कि अहराम काल में किसी जीव की हत्या करना तो दूर उसे कष्ट देने का विचार भी घोर पाप हैं। वास्तव में यदि कोई जान बूझकर यह (हिंसा रूपी) घोर पाप कर बैठे तो पश्चाताप के रूप में गरीबों को भोजन कराने और स्वयं रोजे रखने का विधान है। 'कुफ्फ़ारतु तआम मसाकीन औ अद्ल जालिक सियामन लबज़ूक़ा वबलि अम्र' पृष्ठ 4 (देखिये सूरे मायदा, 5, 95, 96: मुसलमानों! जबकि तुम अहराम (व्रत, हज) की हालत में हो तो शिकार मत मारो और जो कोई तुम में से जान बूझकर शिकार मारेगा तो जैसे जानवर को मारा है उसके बदले में वैसा ही पशु जो तुम में से दो मुन्सिफ़ (न्यायी) ठहरा दें, देना पड़ेगा और भेंटे काबे में भेजना या उसके बदले में भूखों को खिलाना या उसके बराबर रोज़े रखना ताकि अपने किये का फल भोगे। जो हो चुका उसे खुदा ने क्षमा किया और जो फिर करेगा तो अल्लाह उससे बदला लेगा और अल्लाह जबरदस्त बदला लेने वाला हैं। ....जंगल का शिकार जब तक अहराम में रहो तुम पर हराम है।

पाठक अब स्वयं ही विचार करें कि इस्लाम पर यदि सेमिटिक सभ्यता का प्रभाव होता तो इस्लाम में यह अहिंसा का नियम कहाँ से और कैसे आया? कारण यह है कि यह अहिंसा सिद्धान्त केवल आर्य जाति के अन्दर ही विद्यमान है और किसी दूसरी जाति में इस का नाम निशान भी नहीं है।

दूसरा सिद्धान्त (एवम् प्रथा) : हमारे मुसलमान भाई मक्के को अत्यन्त पवित्र और पूजनीय स्थान मानते हैं। विश्व में मुसलमानों के जितने स्थान (तीर्थ) हैं उन में मक्का पवित्रतम और तीर्थोत्तम माना जाता है क्योंकि वह खुदा का मन्दिर विशेष माना जाता हैं। मक्का नगर में जो सब से बड़ी मस्जिद है उस को मस्जिद अल-अहराम

कहते हैं। यह मस्जिद ऐसी नहीं जैसी की हम यहाँ आमतौर पर देखते हैं बल्कि वह दुहरे बरामदों वाला एक चौकोण भवन है जिस के चारों ओर दुहरे बरामदें हैं और बीच में एक बहुत बड़ा आंगन छूटा हुआ हैं। इस आंगन के बीच में एक चौकोण भवन बना हुआ है जो 35 फुट लम्बा और 28 फुट चौड़ा है और जो 'काबा' नाम से जाना जाता हैं। 'काबा' शब्द वास्तव में 'मकाब' से बना हैं जिसका अर्थ है घनाकार अन्यथा इसका वास्तविक नाम बैत-अल्लाः अर्थात् 'खुदा का घर' (देवघर) है। दुनिया का कोई मुसलमान जब नमाज़ पढ़ता है तो उसे काबा की ओर मुँह करना पड़ता है। इसीलिये हिन्दुस्तानी मुसलमान पश्चिमाभिमुख होकर नमाज अदा करते हैं किन्तु अल्-अहराम मस्जिद में नमाज़ पढ़ते समय इसका कोई ध्यान नहीं रखा जाता। प्रत्येक मुसलमान काबा की ओर मुँह करके खड़ा होता हैं। बैत-अल्लाह की परिक्रमा सात बार की जाती है और हज-कर्म में इसका विशेष महत्व हैं। परिक्रमा का प्रारम्भ ईशान (पूर्वोत्तर) कोण से होता हैं। वहाँ काबा की दीवार में एक गोल ताक़ बना हुआ हैं। इस ताक़ में एक बहुत ही पवित्र पत्थर रखा हुआ है जिसका नाम हिज़्र-अल्-अस्वद अर्थात् श्यामशिला हैं। इसके संबंध में मुसलमानों का यह विश्वास है कि जो भी इसका चुम्मबन लेगा उसके सारे पाप क्षमा हो जायेंगे। इसी कारण हर समय वहाँ इतनी भीड़ लगी रहती है कि कोई भी व्यक्ति वहाँ तक आसानी से नहीं पहुँच सकता। यह पत्थर लगभग सात इंच लम्बा और तीन इंच गोलाई में मोटा है और इस पर चाँदी का वर्क़ (खोल) चढ़ा है। केवल ऊपर का भाग खुला है। इसका रंग काला मालूम होता है। कहते हैं कि यह टूट गया था इसलिये इसके टुकड़ों को जोड़ने के लिये चाँदी का पत्र चढ़ा दिया गया। ताक़ में जिस जगह यह रख हुआ है वह जलहरी (अर्घा) के आकार की बनी हुई हैं। जिस किसी भी व्यक्ति ने महादेव जी की मूर्ति को देखा है वह यह नहीं कह सकता कि यह महादेव की मूर्ति नहीं है बल्कि कुछ और है।

अब यहाँ पर प्रश्न यह उठता है कि इस भवन को इस आकार में बनाते वाले कौन लोग थे? इतिहास के अध्ययन से यह प्रमाणित होता है कि अरब के प्राचीन निवासी जो मूर्तिपूजक थे उन्होंने जिस शैली (एवम् आकार) में इसका निर्माण कराया

था यह भवन आज तक वैसा ही है। मुसलमानों ने इसमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया। बुख़ारी किताब अल्तफ़सीर (भाष्य) अध्ययन इन्नाफतहना और तिरमिज़ी किताबुलहज (हज सम्बन्धी पुस्तक) के देखने और कारलाइल महोदय की लाइफ़ ऑफ् मोहम्मद से भी स्पष्ट होता है कि जब मक्के को जीत कर (इस स्थान पर जो मन्दिर था और अरब के मुसलमानों के कथन के अनुसार इस मन्दिर में 360 मूर्तियाँ थीं) इस पर अधिकार किया गया तो सबसे पहले पैगम्बर-ए-इस्लाम ने अपने विश्वास के अनुरूप मूर्तियों को तोड़कर इसको पाक बनाया (अर्थात् इसका उद्धार किया)। क्योंकि पैगम्बर-ए-इस्लाम और उनके अनुयाइयों का यह विश्वास था कि यह भवन खुदा का घर है और काफ़िरों ने इस पर कब्ज़ा करके मूर्तियों से इसको अभिशप्त कर रखा है, अत: मक्का विजय के पश्चात् सबसे पहला काम इस स्थान को इस अभिशाप से मुक्त पवित्र करना ही अत्यन्तावश्यक समझा गया। जिस समय मूर्तियाँ तोड़ी जा रहीं थीं और तोड़ते तोड़ते जैसे ही एक सरदार श्यामशिला के पास पहुँचा और चाहता ही था कि इसको तोड़े उसी समय हज़रत साहिब की दृष्टि उसकी तरफ पड़ गई। आप तत्काल उस स्थान पर पहुँचे और सरदार का हाथ पकड़ लिया और कहा कि इसको मत तोड़ो। यह हमारे पूर्वजों के लिये पवित्र और पूज्य था वैसे ही हमारे लिये भी है। यही कारण है कि तिरमिज़ी में साफ़ लिखा हुआ है। मक्का भवन में किसी प्रकार का परिवर्तन करने से आप ने सब लोगों को रोक दिया। तारीख़-अल्-मक्का (मक्का इतिहास) जो मिश्र के एक प्रख्यात मुसलमान विद्वान द्वारा लिखी गई है उससे मालूम होता है कि इन तेरह सौ वर्षों में इस भवन को तीन बार क्षति पहुँची है किन्तु जब कभी भी इसके पुनर्निर्माण की आवश्यता समझी गई तो हज़रत साहिब के उपर्युक्त आदेश का सख़्ती से पालन किया गया और इसके पुराने ढाँचे में किसी प्रकार से भी अन्दर बाहर का परिवर्तन नहीं करने दिया गया। यहाँ तक कि दीवारों में जो निशान इत्यादि थे उनको भी ज्यों का त्यों बनवा दिया गया। इससे यह प्रमाणित होता हैं कि अरब की प्राचीन मूर्तियों में से एक मूर्ति ऐसी है जो हमारे यहाँ के महादेव की मूर्ति के समान है और इस्लामी काल में भी उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया गया। अब वाशिंग्टन का यह वक्तव्य कि अरब निवासियों की मूर्तिपूजा प्राचीन मिश्र और यूनान से मिलती जुलती थी सच्चा प्रतीत

नहीं होता। उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि प्राचीन अरब निवासी आर्य सभ्यता और संस्कृति में श्रद्धा रखने वाले थे। इस निष्कर्ष तक पहुँचने के लिये अनुमान को आधार बनाया गया है और अकाट्य प्रमाण कोई ऐसा नहीं है कि जिसके आधार पर विरोधी भी बिना ननुनच के हमारे मन्तव्य को स्वीकार कर लें। इतएव मैं इसी प्रकार के विचारों और चिन्ता में निमग्न था कि संयोगवश मुझे मार्च 1923 का अल्-हिलाल नाम का मासिक पत्र मिल गया जिसका प्रकाशन काहिरा से होता है। इसके प्रथम पृष्ठ पर ही एक प्राचीन कविता की कुछ पंक्तियाँ छपी थीं और उन पर सम्पादक की एक टिप्पणी भी थीं। टिप्पणी का अनुवाद नीचे लिखा जाता हैं:-

"गत वर्ष अल्लामा अब्दुल्ला अजहरी (जामिया अजहर मिश्र का विख्यात कॉलिज और विश्वविद्यालय है और अल्लामा साहिब उसके विख्यात और विद्वत्-शिरोमणि प्रोफेसर हैं) हज करने के लिये बैत-अल्ला पधारे थे। वहाँ वे अपने मित्र और सहपाठी कबीला बनी कैस के सरदार के यहाँ मेहमान रूप में ठहरे। विदाई के समय सरदार महोदय ने उनको कुछ उपहार भेंट किये जिनमें प्राचीन समय का एक लेख भी था जो दुम्बे के चर्म पर लिखा हुआ था। यह अरब के एक विख्यात कवि की कविता हैं। अल्लामा महोदय इसको अपने साथ मिश्र ले आये और अनुसन्धानार्थ विश्वविद्यालय के प्राच्य अनुसंधान विभाग को सौंप दिया। प्राच्य विभाग ने बड़े ध्यान से वैज्ञानिक शैली से इसकी जाँच की और यह निष्कर्ष निकाला कि यह लेख एक हज़ार वर्ष से किसी भी हाल में कम नहीं हो सकता। क्योंकि बेपरवाही और प्रयोग की अधिकता के कारण चमड़ा कई जगह से टूट गया था अत: पूरी कविता जो लगभग सत्तर (70) शेर की है साफ़ तौर पर पढ़ी नहीं गई। कुछ शेर ऐसे थे जिनके कुछ वाक्य नहीं पढ़े जा सके। अत: यहाँ उन शेरों को नकल किया गया है जो पूर्णतया ठीक और साफ़ तौर पर पढ़े गये हैं।"

यह कसीदा (कविता) उमरबिन हशाम कुन्नियत अबुलहकम का है। कुल अठारह शेर नकल किये हुए थे। शेरों को नकल करने से पहले मैं यह बता देना चाहता हूँ कि यह कवि उम्र बिन हशाम कौन था और कब हुआ। उमर बिन हशाम

अरब का एक प्रख्यात कवि हुआ है जिसको उसकी योग्यता और विद्वत्ता के कारण अरब निवासी अबुलहकम (ज्ञान का पिता) कहा करते थे और यह हज़रत मुहम्मद साहिब का समकालीन और समायु था और रिश्ते में उनका चचा होता था। किन्तु धर्म संबंधी विषयों में दोनों में सख्त बैर विराध हो गया था यहाँ तक कि हज़रत मुहम्मद के विरोधियों का वह पथप्रदर्शक नेता और सरदार समझा जाता था और अन्त में एक लड़ाई में वह मुसलमानों के हाथों मारा भी गया। मुसलमान उसको अबुलहकम के स्थान पर अबुलजिहल (जाहिलों का बाप) के नाम से पुकारते हैं। मैं यहाँ केवल चार शेर उद्धृत करता हूँ। शेष बड़ी पुस्तक में (जो शीध्र ही छपने वाली है) लिखेंगे। पुस्तक में वास्तविक लिखाई का चित्र भी दिया जायेगा।

क़फ़ा बनक जिक्रु अम्न उलूमु तबअशिरू
कुलूबन् अमातत उल्-हवा व तज़क्करू

जिसने विषय और आसक्ति में पड़कर अपने मन दर्पण को इतना मैला कर लिया है कि उसके अन्दर कोई भी भावना शेष न रह गई है।

व तज़्क्रिहु बाऊदन इलिल्बदए लिलवरा
वलकियाने ज़ातल्लाहे यौमा **तबअशिरु**

आयु भर इस प्रकार से बीत जाने पर भी यदि अन्त समय में धर्म की ओर लौटना चाहे तो क्या वह खुदा (ईश्वर) को पा सकता है? हाँ अवश्य पा सकता हैं।

व अहल नहा उज़हू अरीमन महादेवहु
व मनाज़िले इल्मुद्दीन मिन हुम व सियस्तरु

यदि अपने और अपनी सन्तान के लिये एक बार भी सच्चे मन से महादेव की पूज़ा करे तो धर्म के पथ पर (मंजिलों में) सबसे उत्तम स्थान प्राप्त कर सकता है।

मअस्सैरु अख़्लाक़न हसनः कुल्लुहुम व य अख़ीयु
नुजूमुन अज़यतु सुम्मा कफ़अबल हिन्दु

हे ईश्वर वह समय कब आयेगा जब मैं हिन्दुस्तान की यात्रा करूँगा जो सदाचार का खज़ाना है और पथप्रदर्शक की तरह धर्म का गुरु है।

कौन ऐसा बुद्धिमान व्यक्ति होगा जो इन शेरों को देखकर इस बात को नहीं मानेगा कि प्राचीन अरब निवासियों में आर्य सभ्यता और संस्कृति का प्रसार था। जब मैंने यह कसीदा देखा तो मुझे ज्ञान ही नहीं पूर्ण विश्वास हो गया कि यदि अरब के प्राचीन इतिहास ज्ञान विज्ञान और साहित्य का अनुसंधानात्मक दृष्टिकेण से अध्ययन किया जाए तो यह प्रमाणित हो जायेगा कि अरब़ के प्राचीन निवासी आर्य (हिन्दू) धर्म के मानने वाले आर्य (हिन्दू) थे। किन्तु पर्याप्त सामग्री के अभाव के कारण मैं दो वर्ष तक दुविधा में पड़ा रहा और इस विषय से संबद्ध कोई काम नहीं कर सका। किन्तु काम को करने के लिये मनुष्य कृतसंकल्प हो जाए तो मानव साहस भगवान का प्रसाद बन जाता है। परिणामतः इसी दैवी सहायता के अनुरूप परिस्थितियां बन गई और मैं 1925 में अरब और दूसरे इस्लामी देशों की यात्रा पर निकल पड़ा। मैं अपनी यात्रा का विस्तृत विवरण नहीं लिखूंगा क्योंकि इस विषय पर मैं अलग पुस्तक लिख रहा हूँ जिसमें मेरी यात्रा का सविस्तार विवरण दिया जाएगा।

1925 में मैं यहाँ से चलकर 1931 तक बराबर इस्लामी देशों की सैर करता रहा। इस समय में मैं इराक शाम फ़लस्तीन, मिश्र, तुर्की, ईरान और मराको इत्यादि देशों में घूमता रहा और वहाँ आर्य धर्म का प्रचार भी करता रहा और इसके साथ-साथ अनुसन्धान कार्य भी चलता रहा। वहाँ उन देशों में यात्रा करते करते मेरी यह प्रबल इच्छा थी कि मैं अरब विशेष (हज्जाज़) की यात्रा भी करूँ और एक ग़ैर मुस्लिम के दृष्टिकोण से इस्लाम के जन्मस्थान के दर्शन करूँ। यद्यपि मैं 1917 से पहले तीन बार मक्का मदीना की यात्रा कर चुका था तथापि वे यात्राएं तो मैंने एक मुस्लिम के रूप में इस्लामी धार्मिक कर्तव्यों के पालनार्थ की थी। इसलिये उस समय तो मेरे अन्दर प्रत्येक वस्तु के प्रति श्रद्धा और अन्धविश्वास की भावना की मानों नदी

बह रही थी। उस समय किसी विषयवस्तु के औचित्य अनौचित्य (सत्यासत्य) के बारे में चिन्तन मनन या तर्क वितर्क की आवश्यकता ही नहीं महसूस हो रही थी। किन्तु अब यह प्रबल इच्छा हो चली थी कि अब की बार एक गैरमुस्लिम के दृष्टिकोण से वहाँ की प्रत्येक चीज को देखूँ और वहाँ की सभ्यता, संस्कृति एवं आर्थिक सामाजिक व्यवस्था का समीक्षात्मक निरीक्षण करूँ। किन्तु मैं ऐसा साहस कर नहीं सकता था क्योंकि इस्लाम के विधान के अनुसार कोई गैरमुस्लिम मुसलमानों के इस पवित्र तीर्थ स्थान पर जा नहीं सकता। यह प्रवेश निषेध आज से नहीं बल्कि तेरह सौ वर्ष से जारी हैं। जब हज़रत मुहम्मद साहिब ने मक्के पर कब्जा किया था तो उसके डेढ़ वर्ष बाद ही कुरान के माध्यम से यह ओदश दे दिया गया था कि–

या अय्युहललज़ीना आमनू इन्नमल मुश्रिकूना नजिसुन फ़ला यक़रबुल मस्जिदलहराम बअद आमुहम हाज़ा (सूर-ए-तौबा, रुकू 4, पारा 10)

अर्थात् मुसलमानों! मुशरिक (गैर मुस्लिम) नापाक हैं। इसलिये वे मस्जिद अल् अहराम के पास इस साल के बाद न आने पावें। यद्यपि इस आदेश के अनुसार गैरमुसलमानों को मस्जिद-अल्-अहराम के पास आने से मना किया गया है तथापि हज़रत मुहम्मद ने हदीस बुख़ारी-व-मुस्लिम अपने अन्तिम समय इस (प्रतिबन्ध) को बढ़ाकर सारे अरब पर लागू कर दिया था। परिणामत: हदीस में आता हैं कि-

अख्रजअल यहूद व न्सारा मिन जज़ीरतुल अरब

अर्थात् समस्त अरब टापू से यहूदियों और ईसाइयों (गैरमुसलमानों) को निकाल दो।

इस हदीस में केवल यहूदियों और ईसाइयों के निकाल देने का उल्लेख हैं। इसका कारण मात्र यह है कि हज़रत साहिब के काल के अन्त तक अरब के गैरमुस्लिम निवासियों में से केवल यहूदी और ईसाई मुसलमान नहीं बने थे। शेष सभी गैरमुस्लिम विशेषत: अरब के प्रचीन धर्म के अनुयायी मुसलमान बना लिये गये थे और इन दोनों सम्प्रदायों के अतिरिक्त कोई भी गैरमुस्लिम नहीं बचा था। इसी कारणवश

विशेषतौर पर इन्हीं दो सम्प्रदायों का नाम लिया गया हैं। परिणाम स्वरूप हज़रत उमर द्वितीय खलीफा के खिलाफत समय में अरब से सब गैरमुसलमानों को निकाल दिया गया और उस समय से अब तक इस आदेश का सतत रूप से पालन किया जा रहा हैं। कोई गैरमुस्लिम अरब में खुलेतौर पर नहीं जा सकता। कई वर्ष पूर्व जब हिन्दुस्तानी मुसलमानों में खिलाफत आन्दोलन हुआ था तो उसका एक कारण यह भी था कि यूरोपीय महायुद्ध के समय अरब का गवर्नर शरीफ हुसैन अपने बादशाह तुर्की के सुलतान से बागी होकर अंग्रेजों से मिल गया था और हुसैन की सहायता के लिये अंग्रेजी सेना अरब में प्रवेश कर गई थी। उस सेना में मुसलमान और गैरमुसमान सभी थे जिससे तमाम मुसलमानों में आत्यंन्तिक घबराहट और बेचैनी फैल गई थी। मुसलमान शरीफ़ हुसैन के शत्रु बन गये और उन्होंने अरब टापू की स्वतंत्रता की मांग शुरु कर दी। अन्त में इब्न सऊद ने शरीफ़ हुसैन को निकाल कर अरब पर कब्ज़ा कर लिया क्योंकि खिलाफ़त आन्दोलन के कारण शरीफ़ हुसैन के साथी और सहायक अंग्रेजों ने इब्न सऊद के विरुद्ध उसकी कोई सहायता नहीं की। स्वयं शरीफ़ हुसैन में इतनी शक्ति न थी कि वह इब्न सऊद के सामने अकेला लड़ता। अत एव इब्न सऊद के काल में फिर वही निषेधात्मक आदेश लागू हो गया और ऐसी सख्ती से उसका अनुपालन किया गया कि गैरमुस्लिम राजदूत भी वहाँ नहीं जा सकते। उनको मक्का में न रहकर जद्दा में रहना पड़ता है और मक्का क्योंकि अरब की राजधानी है इसलिये उनको अपना एक सहायक मुसलमान मक्का में रखना पड़ता हैं। अभी गत् 12 अप्रैल 1933 के 'इनक़लाब' एवं जमींदार आदि समाचार पत्रों में सऊदी सरकार के कराची स्थित दूत की ओर से एक सूचना छपी थी जिसका शीर्षक था 'तम्बीह' अर्थात् चेतावनी। शीर्षक के नीचे ये शब्द लिखे हुए थे :-"गत वर्ष सात गैर मुसलमानों ने वेश बदल कर हमारे देश में घुसने की कोशिश की। लेकिन उनका पता चल गया और उनको गोली मार दी गई। अत: चेतावनी दी जाती है कि कोई गैरमुस्लिम वेश बदलकर या किसी तरह भी हमारे देश में आने की कोशिश न करे अन्यथा उपर्युक्त दण्ड का भागी होगा।" इस नोटिस से भी इस बात का प्रमाण मिलता है कि ज्जिाज़ में अरब गये और बहाँ की परिस्थितियों से सम्बद्ध पुस्तकें भी उन्होनें लिखी किन्तु वे इस तरह आते रहे कि मिश्र आदि इस्लामी देशों में आकर औपचारिक

रूप से इस्लाम की दीक्षा लेते और एक मुसलमान के रूप में हज करने के लिये मक्के की यात्रा करते। किन्तु मुझे ऐसा करना अमान्य था और न ही मैं यह चाहता था कि वैदिक धर्म का अनुयायी और आर्य मिशनरी होकर लोगों को धोखा दूँ और जिस सिद्धान्त पर मेरा विश्वास नहीं उसका अनुसरण करके अरब की यात्रा करूँ। तथापित ईश्वर ने एक ऐसा रास्ता निकाल दिया कि मैंने बड़े आराम और अभय के साथ हज्जाज की यात्रा की और स्वयं हज्जाज़ सरकार के यहाँ मेहमान के रूप में उन्हीं के खर्च पर सब स्थानों की भली भाँति सैर की। क्योंकि यह सारा वृत्तान्त इस छोटे से ट्रैक्ट में नहीं आ सकता इसलिये इसकी चर्चा बड़ी पुस्तक में करेंगे।

इस सारी यात्रा में मेरा उद्देश्य यह था कि मैं अरब के प्राचीन मजहब (धर्म) के सम्बन्ध में खोज करूँ। इस उद्देश्य में अच्छी फलता भी मिली। प्राचीन अरब कवियों के ऐसे ऐसे कसीदे मुझे मिले जिनसे यह बात पूर्णतया स्पष्ट हो जाती है कि अरब निवासी इस्लाम से पहले हिन्दू थे और इस्लाम से दो अढ़ाई हजार वर्ष पूर्व उनमें वेदों का प्रचार था। वे लोग वेदों को पूर्णतया उसी तरह मानते थे जैसे कि हम और आप मानते हैं। वेदों के अन्दर उनकी श्रद्धा और विश्वास आर्यों का सा था। किन्तु महाभारत युद्ध के पश्चात् भारतवर्ष में समूल परिवर्त न हो गया और आर्यजाति जर्जर होकर बिखर गई तो लोगों के अन्दर अन्धविश्वास ने घर कर लिया। आर्य जाति में पौराणिक मत और तत्पश्चात् बौद्धमत के सिद्धान्तों ने जन्म लिया तो इस परिवर्तन से अरब देश भी अछूता न रह सका। समय समय पर इस देश के प्रचारक जाते रहे और अरब देश में अपने सिद्धान्तों का प्रसार करते रहे यहाँ तक कि हज़रत मुहम्मद के प्रादुर्भाव से पूर्व अरब में वाममार्ग और तांत्रिकों का हर जगह प्रचार था। पैगम्बर-ए-इस्लाम ने अपने समय में वाममार्ग और तांत्रिकों का कड़ा विरोध किया था और अपने पूर्वजों के प्राचीन धर्म को फिर से वापस लाने का बीड़ा उठाया था। उस समय उन्होंने जिन सिद्धान्तों का मक्के में बारह तेरह वर्ष तक प्रचार किया वे आज के इस्लाम के सिद्धान्तों से पूर्णतया भिन्न थे और उन के पूर्वजों के वैदिक सिद्धान्तों और मन्तव्यों के अनुरूप थे।

हमारे मुसलमान भाई इस बात पर विचार करें और पक्षपात और संकुचित

दृष्टिकोण को छोड़ कर उन नई बातों की ओर ध्यान दें जिन को इतिहासकार अपने पक्षपात और हठधर्मी के कारण इतिकास से निकाल कर या काल के अँधेरे पर्दे में छिपा कर सन्तुष्ट हो बैठे थे कि अब संसार को इन का पता नहीं लगेगा। इस के अतिरिक्त हमारे सनातनी भाई जो अपने अज्ञान और अन्धकार के कारण आर्यसमाज के कामों का विराध ही नहीं करते अपितु उस में रोड़ा भी अटकाते है, वे भी सोचें कि आज वे जिस शुद्धि आन्दोलन तथा विदेशों में धर्म प्रचार का विरोध करते हैं, एवम् मुसलमान और ईसाइयों के हिन्दु धर्म में प्रवेश में तरह तरह की रूकावटें डालते हैं उन का यह काम कहाँ तक उचित या ठीक है? आज से दो ढ़ाई हज़ार वर्ष पूर्व बौद्ध काल से भी पहले हमारे धर्म प्रचारक विदेशों में बराबर अपने धर्म का प्रचार प्रसार करते थे। इन सब तथ्यों के प्रमाण उन कसीदों से मिलेंगे जो अरब के प्राचीन कवियों ने लिखे हैं। महाराजा राम और योगीराज कृष्ण के अवतार मानने वाले तथा पौराणिकों के चरण भी वहाँ पहुँचे थे। इस प्रकार पूर्व के वैदिक सूर्य का प्रकाश सारे पश्चिम को प्रकाशित करता रहा था। ये हमारी मनघड़न्त बातें नहीं हैं। यह आज से हज़ारों वर्ष पूर्व के विदेशी कवियों की वाणी हैं। क्या हम यह आशा कर सकते हैं कि हमारे अपने ही देश और परिवार के भाई, जो बात बात पर हमारा विरोध करने पर तुले होते हैं और अपने पूर्वजों के पद चिह्नों पर चलने की दुहाई देते हैं, यह जानने पर कि उन के पूर्वज भी वही करते रहे हैं जो आज आर्यसमाज कर रहा हैं, हमारा विरोध छोड़ कर हमारे कामों में सहायता करेगें।

अब हम यहाँ केवल दो तीन क़सीदों की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत करेंगे क्योंकि पूरी कविताओं के उध्दरण का स्थान इस छोटे से ट्रेक्ट में नहीं है। मैं बैत्-अल-मुक़द्दस (अर्थात् पवित्र स्थान पुण्य भूमि) यरोशलम में गया जो फलस्तीन की राजधानी है एवं मुसलमान, ईसाई और यहूदी तीनों के लिये पुण्यभूमि और पवित्रस्थान है। ईसाई और यहूदी तो इस नगर को वही स्थान देते हैं जो मुसलमान मक्के को देते हैं पर मुसलमान इस को मक्के के पश्चात् पवित्रतम धार्मिक स्थान मानते हैं। यहाँ एक प्रसिद्ध पुस्तकालय है जिसकी स्थापना तुर्की के शासनकाल में एक गवर्नर ने सुल्तान अब्दुल हमीद के नाम पर की थी। यह भव्य पुस्तकालय बहुत सी बातों में यूरोप

के किसी भी बड़े पुस्तकालय के समान हैं। इसके भवन पर लगभग आठ दस लाख रुपया खर्च हुआ होगा। यह एक राजभवन जैसा है और इसमें नवीनतम सामान और उपकरण मौजूद हैं। इस में हजारों की संख्या में प्राचीन पाण्डुलिपियाँ ऊँट की झिल्लियों, खजूर के पत्तों और जानवरों के चमड़े पर लिखित सुरक्षित रखी हैं। इन में अरबी, सिरियानी, मिश्री, इब्रानी भाषाओं के भिन्न भिन्न कालों के सैकड़ों नमूने यहाँ रखे हैं। विशेषत: अरबी भाषा की लिपि के बदलते अक्षराकार के तो पचासों नमूने मौजूद है। जब मैं यरोशलम के इस पुस्तकालय में गया तो मुझे ऊँट की झिल्ली पर लिखित एक पुस्तक मिली जो लगभग आठ सौ वर्ष पूर्व लिखी गई होगी। इस पुस्तक का नाम सैरूलकूल है और यह अरब के प्राचीन कवियों का इतिहास है। इस्लाम के इतिहास में एक जगद्विख्यात बादशाह हुए हैं जो अलिफ़लैला की कहानियों के कारण बहुत प्रसिद्ध हैं। इनका नाम खलीफ़ा हारूँ रशीद था और इन्हीं के दरबार में आज से करीब बारह सौ वर्ष उक्त पुस्तक का लेखक (कर्ता) कविशिरोमणि के स्थान पर शोभायमान था। इस लेखक का नाम अस्मई था। उसने बड़ी योग्यता निष्पक्षता तथा अत्यन्त साहस और परिश्रम से इस पुस्तक का संकलन किया था उसने इस पुस्तक में मज़हबी पक्षपात की बू तक नहीं आने दी। यद्यपि वे सारे कवि जिनका हाल उसने संकलित किया है वे गैरमुसलमान थे। उनमें भी बहुत सारे तो हज़रत मुहम्मद के समकालीन थे और उन्होंने हज़रत मुहम्मद साहिब का विरोध भी किया था। उन सब के भी वृत्तान्त सही और वास्तविक घटनाओं साहित उसने लिखे हैं। ये जीवन वृतान्त आश्चर्यजनक है।

उपर्युक्त पुस्तक की भूमिका में से कुछ वृत्तान्त यहाँ उद्धृत करते हैं ताकि पाठकों को समझने में आसानी हो। वह लिखता है-

"मक्का नगर में एक मन्दिर था जिसको अरब के सभी निवासी अपना पवित्र तीर्थस्थान मानते थे और उसके दर्शन के लिये दूर-दूर से यात्री आते थे। क्योंकि अरब में सदा लड़ाई झगड़ा और लूटमार का बाजार गरम रहता था। इस कारण से यात्रियों को रास्ते में बहुत कष्ट होता था और बहुधा वे लूट लिये जाते थे और उनकी हत्या भी कर दी जाती थी। इन सभी कारणों से यात्रियों की संख्या में कमी होती

रहती थी इसलिये यात्रियों की संख्या घटने से जो हानि उनको हो रही थी उसे वे किसी तरह सहन नहीं कर सकते थे। कारणवश अरब निवासियों ने यह तय किया कि वर्ष में चार मास ऐसे नियत कर दिये जाएं कि उनमें लड़ाई झगड़े एवम् मारधाड़ तथा हत्या का पूर्ण रूप से निषेध कर दिया जाये। अत: चार मास नियत कर दिये गये जिनको अश्हरुलहराम (पवित्र चातुर्मास) कहा जाता था। इन दिनों मक्के में एक भारी सामूहिक मेला होता था जिसको अरब निवासी अकाज़ के नाम से पुकारते थे। उस मेले में अरब के प्रत्येक भाग में सुख शान्ति का वातावरण रहता था और यात्रामार्ग सुरक्षित रहते थे इस लिये यात्री भारी संख्या में मेले में सम्मिलित होते थे। मेले में जहां एक ओर मनोरंजन के लिये तरह तरह के खेल तमाशे होते थे वहां दूसरी ओर एक विशाल कवि दरबार भी होता था जिसमें अखिल अरब के सुयोग्य और ख्यातिप्राप्त कवि सम्मिलित होते, अपनी कविताओं से यात्रियों को आनन्दित करते, समाज के दिलों पर अपनी योग्यता और विद्वत्ता की धाक जमाते और तदनुसार उनसे साधुवाद प्राप्त करते थे। मेले में प्रतिवर्ष जिन दस कवियों की कविताएं उत्तम और श्रेष्ठ स्तर की पाई जाती उनको देश और जाति के द्वारा पुरस्कृत किया जाता था। सबसे उत्तम कविता (क़सीदा) कहने वाले कवि को प्रथम पुरस्कार दिया जाता और उसकी कविता को स्वर्णपत्र पर लिखवाकर मक्का-मन्दिर के अन्दर लटका दिया जाता था। उस कवि को भावी कवि दरबार के होने तक अरब का कवि शिरोमणि माना जाता था। साहित्य के क्षेत्र में उसका प्रत्येक निर्णय सत्य श्रेष्ठ और सर्वमान्य होता था और अरब वाले बिना किसी ननु नच के सश्रद्धा उसके सामने नतमस्तक होते थे। शेष नौ कवि दूसरे स्थान पर आये समझे जाते और उनमें परस्पर कोई अन्तर नहीं समझा जाता था और सभी बराबर माने जाते थे। उनकी कविताएं ऊँट की झिल्ली और दुम्बे की खाल पर लिखवाकर काबे की ऊपरी दीवारों पर लगा दी जाती थी। इस प्रकार प्रतिवर्ष दस चुने हुए श्रेष्ठ कसीदे इस मन्दिर के साहित्य कोष में सुरक्षित रख दिये जाते थे। यह प्रथा हजारों वर्ष से चली आ रही है। इसके प्रारम्भ और प्रारम्भ करने वाले के विषय में साहित्य का वर्तमान इतिहास प्रामाणिक तथ्य अभी तक नहीं खोज पाया है। केवल यह पता है कि इस प्रकार अरब निवासियों ने ज्ञान और साहित्य का अमूल्य भण्डार अपने पास संचित और सुरक्षित रख रखा था। किन्तु जब इस्लामी

लश्कर ने मक्का शहर को युद्ध में जीत लिया और इस मन्दिर की सारी मूर्तियाँ साफ कर दी तो इस बरबादी के दौरान से सभी कसीदे भी विनष्ट कर दिये गये। यदि इनको नष्ट न किया जाता तो आज अरब निवासियों के पास ज्ञान विज्ञान और साहित्य का वह अमूल्य भण्डार होता जिस के सामने संसार की बहुत कम भाषाओं में लिखित साहित्य ठहर सकता। किन्तु यह शोक का विषय है कि कितने ही वर्षों से संचित और सुरक्षित वह ज्ञान भण्डार कुछ ही क्षणों में ध्वस्त कर दिया गया। विजय के समय इस्लाम के इस लश्कर में अरब का एक विख्यात कवि हसान बिन साबित भी शामिल था। वह इस विनाश को सह न सका। इसलिए उसने कुछ बहुमूल्य कसीदे जो उसके हाथ लग सके अपने पास सुरक्षित रख लिये। ये कसीदे देश की धरोहर के रूप में उसके पास बहुत दिनों तक सुरक्षित रखे रहे। उसके देहान्त के पश्चात् भी उसकी तीसरी पीढ़ी में जब साहित्य के प्रेमी और प्रजामित्र आस्तिक शिरोमणि खलीफ़ा हारूँ रशीद का दौरदौरा था और उनके साहित्य प्रेम की ख्याति सारे अरब में ही नहीं बल्कि आस पास के दूसरे देशों में भी फैल चुकी थी तो उसी ख्याति से प्रभावित होकर मस्लम बिन अस्लम बिन हसान उन कसीदों को लेकर मदीना से बगदाद को रवाना हुआ और यहां आकर वह मुझे (अर्थात् अस्मई से) मिला और मुझे वे क़सीदे दिखाये। मैं उसे अपने साथ हजरत अमीरुलमोमनीन की सेवा में ले गया। वहां उन कसीदों के लिये साधुवाद के रूप में बड़ा इनाम मिला। मस्लम ने जो कसीदे पेश किये थे वे ग्यारह हैं जिनमें से तीन सोने के पत्रे पर हैं जो लबी बिन अख्तब बिन तुर्फा के हैं और शेष आठ चमड़े पर लिखे विभिन्न कवियों के हैं।''

ऊपर लिखे उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है कि इस्लाम से पूर्व अरब में साहित्य ज्ञान विज्ञान उन्नति के शिखर पर था। यह तथ्य दूसरे इतिहासकारों के लेखों से भी प्रमाणित है कि उस काल में बच्चे, युवा, बूढ़े और स्त्रियाँ सभी में ज्ञान चर्चा हुआ करती थी क्योंकि वे लोग इसमें बड़ी रुचि रखते थे। यद्यपि हमारे मुसलमान मित्र उस काल को 'असभ्यता काल' का नाम देते हैं तथापि स्वाध्याय तथा लेखनशील पाठक स्वयं इस बात का निर्णय कर लें कि जिस देश और जाति का ज्ञान विज्ञान तथा साहित्य उन्नति के इस स्तर पर पहुंच चुका हो उसका वह काल असभ्यताकाल

कहा जा सकता है क्या? कभी नहीं। यदि मुसलमान यह कहें कि क्योंकि वे हमारे दृष्टिकोण के अनुसार कार्यव्यवहार नहीं करते थे और उनकी सामाजिक व्यवस्था इस्लामी सिद्धान्तों के अनुरूप नहीं थी इसलिये उन्हें 'जाहिल' और उस काल को 'असभ्यता काल' कहते हैं तो यह दलील भी मानने योग्य नहीं है। यदि इस्लामी इतिहासकार यह भी चाहें कि वे उन के विषय में परस्पर लड़ाई झगड़े शराबखोरी और इसी प्रकार की और बातें दुनियां के सामने कहकर उनके जाहिल होने के पक्ष में सप्रमाण हाँ करवा ले तो यह दलील भी ठीक नहीं। आज संसार में कौन सी ऐसी जाति है जिसे सभ्य तो माना जाता है किन्तु उसके जीवन में ये बातें नहीं है।

मुसलमान अपने चचेरे भाई अर्थात् ईसाई जातियों को ही देखें जिनकी सभ्यता को हिन्दुस्तानी विशेषकर मुसलमान बड़े गर्व के साथ अपनाने की कोशिश कर रहे हैं। क्या उनके अन्दर ये बातें नहीं पाई जाती? क्या युरोप युद्ध का अखाड़ा नहीं बना? और क्या वे लोग शराबनोशी को सभ्यता का अंग नहीं मानते? ये सब कुछ उनमें हैं किन्तु फिर भी सभ्यता संस्कृति में उनको उस्ताद माना जाता है। और लोग बड़े गर्व से उनका अनुसरण करते हैं। स्पष्ट है कि उस समय के अरब लोगों को जाहिल और जंगली कहने में मात्र मजहबी पक्षपात से काम लिया गया है। अन्यथा वे लोग ऐसे गिरे हुए नहीं थे।

अब हम उपर्युक्त पुस्तक से एक क़सीदे के कुछ शेर नमूने के तौर पर पेश करते हैं जिसके संबंध में लेखक (अर्थात् सम्पादक) अस्मई ने लिखा है कि ये शेर उसी सोने के पत्र से उद्धृत किये गये हैं जिसे मस्लम ने अमीन-अल-मोमनीन के दरबार में पेश किया था। उस किताब में सबसे पहले नम्बर पर उसने जिस कवि की चर्चा की है उसका नाम लबी बिन अख्तब बिन तुर्फा है और वह कहता है कि "अरबी साहित्य में यह कवि क़सीदे का जन्मदाता है और काव्य नियमों को सिद्धान्त विशेष के अनुरूप ले आने वाला यह पहला कवि था। इस कवि ने अरबी साहित्य को प्रगति के पथ पर डाला। वह अरबी साहित्य में कई विधाओं का सर्जक भी था। उसका समय हज़रत मुहम्मद साहिब से लगभग तेईस चौबीस सौ वर्षपूर्व का है।"

इसके पश्चात् पांच शेर कविता के नमूने के तौर पर उसने पेश किये हैं। जिस समय मैंने उनको पढ़ा मैं सच कहता हूं मैं सक्ते की हालत में आ गया (स्तब्ध रह गया) और पन्द्रह बीस मिनिट के लिये मैं अपनी दुनियां से ही कहीं दूर चला गया। कितना चमत्कारी और विस्मयकारी तथ्य है यह कि जो अरब वैदिक धर्म का अनुनायी और वेदों का मानने वाला था उसको इतिहासकारों ने सेमिटिक सभ्यता का पुजारी प्रमाणित किया है। अब मैं पाठकों के लिये वे पांच शेर नीचे उद्धृत करता हूं।

अया मुबारक-अल-अर्जे युशन्नीहा मिन-अल-हिन्द
व अरदिकल्लाह यन्नज़िजल ज़िक्रतुन

हे भारत की पुण्य भूमि तु स्तुति करने योग्य है क्योंकि अल्लाह ने अपने अलहाम (दैवी ज्ञान) का तुझ पर अवतरण किया है।

वहल बहलयुतुन अैनक सुबही अरब अत ज़िक्रू
हाज़िही युनज्ज़िल अर रसूलु मिन-आल-हिन्दतुन

वे चार अलहाम (ग्रन्थ) जिनका दैवी ज्ञान ऊषा के नूर के समान है हिन्दुस्तान में खुदा ने अपने रसूलों पर नाज़िल किये हैं। (हृदय में प्रकाशित किये हैं।)

यकूलून-अल्लाहा या अहल-अल-अर्जे आलमीन कुल्लुहम
फत्तबाऊ जिक्रतुल वीदा हक्कन मालम युनज्ज़िलेतुन

अल्ला ने तमाम दुनिया के मनुष्यों को आदेश दिया है कि वेद का अनुसरण करो जो नि:सन्देह मेरी ओर से नाज़िल हुए हैं।

व हुवा आलमुस्साम वल युजुर् मिनल्लाहि तन्ज़ीलन्
फ़-ऐनमा या अख़ीयु तबिअन् ययश्शिबरी नजातुन्

वह ज्ञान का भण्डार साम और यजुर हैं जिनको अल्लाह ने नाज़िल किया हैं

बस, हे भाईयों उसी का अनुसरण करो जो हमें मोक्ष का ज्ञान (बशारत) देते हैं।

व इस्नैना हुमा रिक् अथर् नासिहीना उख़्वतुन्
व अस्नाता अला ऊदँव व हुवा मशअरतुन्

इनमें से दो ऋक् और अथर्व हैं जो हमें भ्रातृत्व (एकत्व) का ज्ञान देते हैं। ये कर्म के प्रकाश स्तम्भ हैं। हमें आदेश देते हैं कि उन पर चलें।

उक्त शेरों का अर्थ समझने के लिये किसी टीका टिप्पणी की आवश्यकता नहीं है। एक एक शब्द से यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि लबी बिन अख्तब बिन तुर्फा का वेदों पर पूर्ण विश्वास था और वेदों के प्रति उसके हृदय में सच्चे प्रेम और श्रद्धा की भावना विद्यमान थी। यहाँ पर कोई यह भी नहीं कह सकता कि वेदों से उन वेदों का मतलब नहीं क्योंकि वे और वेद थे क्योंकि उसने चारों वेदों का जहाँ साफ नाम बताया है वहां यह भी कह दिया है कि उनको हिन्दुस्तान में खुदा ने अपने रसूलों पर प्रकट किया। ये शेर हज़रत मोहम्मद साहिब से करीब चौबीस सौ वर्ष पूर्व के हैं और तेरह सौ पचास वर्ष हज़रत साहिब को हुए। अर्थात् इस कवि को गुजरे हुए तीन हज़ार सात सौ पचास वर्ष होते हैं। इससे महर्षि दयानन्द के इस कथन की पुष्टि हो जाती है कि महाभारत के समय तक आर्य सभ्यता और वैदिक धर्म का झण्डा सारे विश्व पर लहरा रहा था।

मुझे अरबी ज्ञान विज्ञान साहित्य सम्बन्धी प्राचीन कवियों के जितने कसीदे अभी तक मिले हैं उनमें प्राचीनतम वे ही कसीदे हैं जिनकी चर्चा हमने ऊपर की है। इनमें वेदों की ही स्तुति साफ़ तौर पर की गई है और जितने भी कसीदे मिले हैं वे सबके सब इनके बाद के हैं। वे हज़रत मुहम्मद साहिब से एक हजार वर्ष पूर्व से इधर-इधर के हैं और उनमें वेदों के स्थान पर पौराणिक सिद्धान्तों (उसूलों) और देवी देवताओं अवतारों और मूर्तिपूजा इत्यादि के सम्बन्ध में ही लिखा गया है। इससे प्रमाणित होता कि बौद्धमत के प्रादुर्भाव के बाद भी जब हिन्दुस्तान में मूर्तिपूजा का प्रसार हुआ तो यहां के विद्वान और उपदेशक समय समय पर दूसरे देशों में जाकर अपने धर्म का

प्रचार करते रहे। हमें अरबी कवियों की ऐसी कई कविताएं मिली हैं जिनके अध्ययन से नि:सन्देह इस बात का प्रमाण मिलता है कि हिन्दुस्तान के विद्वान और उपदेशक अरब देश में भी पहुंचते रहे हैं। काहिरा के सार्वजनिक पुस्तकालय से एक कसीदा मिला है जो आजिज़ बिन हमज़ा का लिखा हुआ है। यह कवि हज़रत मुहम्मद साहिब से करीब तीन सौ वर्ष पूर्व अरब में हो गुजरा है। उसने अपने कसीदे में इस बात की स्पष्ट चर्चा की है कि हम अज्ञान और सभ्यता के अन्धकार में फंसकर सत्यधर्म से दूर जा पड़े थे। ऐसे समय में हिन्दुस्तान के राजा विक्रमादित्य ने कृपा करके दो पवित्रात्मा विद्वानों को यहां भेजा जिन्होंने सत्य और धर्म का मार्ग दिखाकर हमारे अज्ञान (जहालत) को दूर किया (कसीदा अपने वास्तविक रूप में बड़ी पुस्तक में ब्लाक फोटो सहित बड़ी पुस्तक में छाप दिया जायेगा।) इससे प्रमाणित होता है कि हिन्दुस्तान के धर्मप्रचारकों का विदेशों में जाकर धर्म प्रचार करने का क्रम सदा से जारी रहा है। बौद्ध धर्म के अभिभव के बाद भी हिन्दुस्तान में जब अवतारवाद नवीन वेदान्त वाम मार्ग इत्यादि का प्रचार हुआ तो उसके प्रचारक भी अरब आदि देशों में धर्म प्रचार के उद्देश्य से जाते रहे यहां तक कि हज़रत मुहम्मद के जन्म के समय अरब निवासी वाममार्ग के पक्के अनुयायी बन चुके थे। उनको विश्वास हो चला था कि मोक्ष का मार्ग है मदिरापान, मांसभक्षण, भोगविलास इत्यादि जिनके विरुद्ध हज़रत मुहम्मद ने आवाज़ उठाई। यह ऐतिहासिक तथ्य है कि हजरत मुहम्मद के जन्म तक अरब और हिन्दुस्तान का सम्बन्ध बराबर बना रहा था जिसका प्रमाण अबुल हकम बिन हशाम के वे शेर हैं जिन्हें हम पहले ही उद्धृत कर चुके हैं और जिनमें उसने भगवान से प्रार्थना की है कि वह समय शीघ्र आवे जब उसे हिन्दुस्तान के दर्शन करने का सौभाग्य मिले। हिन्दुस्तान के दर्शन करने के लिये इतनी उत्सुकता इस बात का प्रमाण है कि वे लोग हिन्दुस्तान को बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। हिन्दुस्तान और यहां के प्रति जब उनके हृदय में इतनी श्रद्धा थी तो यहां पर होने वाले परिवर्तनों और वैचारिक (धार्मिक) क्रान्तियों का उन पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। जब अविद्या अन्धकार में फंसकर हिन्द निवासी शुद्ध और पवित्र वैदिक सिद्धान्तों को छोड़ बैठे और वेद के स्थान पर पुराणों और तन्त्र इत्यादि ग्रन्थों को मानने लगे तो इस परिवर्तन का आवश्यक परिणाम यह होना ही था कि वे सब

दूसरे देश जो भारत को अपना गुरु और पथप्रदर्शक मानते थे और हर बात में उसका अनुसरण करते थे इस परिवर्तन में भी उनका अनुसरण करें। परिणाम यह हुआ कि वहां भी मूर्तिपूजा आदि का प्रचार इस हद तक पहुंचा कि मूर्ति और मूर्तिपूजा को ही मोक्ष का मार्ग समझा जाने लगा। अहिंसा धर्म की जगह हिंसा ने ले ली और भगवान को प्रसन्न करने के लिये मूक पशुओं और निर्दोष मनुष्यों तक की बलि चढ़ाई जाने लगी।

इस छोटे से ट्रैक्ट के अन्दर सब बातों पर सविस्तार प्रकाश डालने और प्रमाण जुटाने का स्थान नहीं है और न ही हम सारे कसीदों को उद्धृत कर सकते हैं। इसलिये अब मैं हज़रत मुहम्मद से 500 या 550 वर्ष पूर्व का एक कसीदा उद्धृत करता हूं। यह अरब का वह समय था जब वहां मूर्तिपूजा और अवतारवाद पूरी तरह छाया हुआ था और देवी देवताओं की पूजा गांव गांव और घर घर में होती थी। उस समय पूजा में हजारों पशुओं का प्रतिदिन खून बहाया जाता था यहां तक कि विशेष अवसरों और पर्वों पर मनुष्य की बलि से भी परहेज नहीं किया जाता था क्योंकि उसको अत्यन्त पुण्य कर्म समझा जाता था। यह कसीदा कुस्तुन्तुनिया के सरकारी सार्वजनिक पुस्तकालय में सुरक्षित रखा है। यह पुस्तकालय पहले तो तुर्की के बादशाहों का निजी पुस्तकालय था किन्तु जनतंत्र शासन की स्थापना के पश्चात् इसका जन समर्पण कर दिया गया। कुस्तुन्तुनिया विश्वविद्यालय हाल के पास ही एक भव्य शाही महल है जिसे किसी पूर्व सुल्तान ने अपनी चहेती बेगम के लिये बनवाया था। अब वही महल पुस्तकालय के लिये प्रयोग में लाया जा रहा है। उक्त कसीदा इसी पुस्तकालय में रखा है। यह कसीदा रूप और लेखन सौन्दर्य की दृष्टि से भी एक दुर्लभ और दर्शनीय वस्तु है। इसका समय करीब बारह सौ पचास वर्ष पूर्व का है। इसको खलीफ़ा इब्न अब्दुल मुल्क अमवी ने अपने समय में किसी यूनानी उस्ताद से लिखवाया था। यह स्वर्ण के पत्रों पर लिखा हुआ है। इसके ग्यारह पन्ने हैं जिनको पुस्तक के रूप में एक साथ संकलित कर दिया गया है। इसकी रूप सज्जा और शिल्प सौन्दर्य का कैसे वर्णन करूँ? यह सम्भव ही नहीं कि इसकी वास्तविक सुन्दरता और शिल्पकला का लेखनी के द्वारा दर्शन कराया जा सके। स्वर्ण के पतले वर्क कागज़ से कुछ ही

रूप सज्जा और शिल्प सौन्दर्य का

मोटे होंगे। दो दो को आपस में जोड़ दिया गया है और बीच में लाल रंग का चमड़ा लगा दिया है और पत्रों के दोनों ओर इस तरह कटाई की गई है कि उससे अक्षर बनते चले गये हैं अर्थात् पत्रों के बीच लाल चमड़ा लगा हुआ है इसलिये दोनों तरफ के कटे हुए अक्षर साफ और स्पष्ट दिखाई देते हैं। जैसे कागज पर दोनों ओर लिखा हुआ होता है। इसके अतिरिक्त हाशिये पर दोनों ओर जो अद्‌भुत बेल बूटे बनाये गये हैं वे देखने योग्य हैं। कुछ बेलबूटे तो इतने बारीक हैं कि लेखनी के काम से उनकी सुन्दरता को चार चांद लग गये हैं। इन पत्रों का विस्तृत इतिहास सुल्तान सुलेमान-ए-आजम, जो तुर्की का विख्यात बादशाह हो चुका है के समय की तुर्की भाषा में लिखा हुआ है और पत्रों के साथ लगा हुआ है। मैं यहां उसकी नकल न करके केवल इतना बताना चाहता हूं कि खलीफ़ा इब्न अब्दुल्मुल्क एक आराबी (देहाती) से किसी प्राचीन अरबी क़सीदे के कुछ शेर सुनकर इतना प्रसन्न हुआ और उसे कुछ ऐसा शौक़ पैदा हुआ कि अपने कुछ दरबारी कवियों को विशेष इस काम के लिये हजाज़ रवाना किया ताकि वे वहां कबीलों में घूम फिर कर प्राचीन कवियों की कविताओं को इकट्ठा करें। अत: दो वर्ष के सतत प्रयास और परिश्रम के साथ खोज करने के पश्चात् सात पूरे कसीदे और एक सौ से अधिक फुटकर शेर प्राप्त हुए जिनको बादशाह इब्न अब्दुल्मुल्क ने एक विशिष्ट युनानी या सरदीन कलाकार से लिखवाया।

इस संकलन में तीसरे नम्बर पर जो कसीदा लिखा गया है उसके कुछ शेर उद्धृत करते हैं। स्थानाभाव के कारण सम्पूर्ण कसीदा उद्धृत नहीं कर रहे। यह कसीदा आर बिन अंसबिन मिनात का है जिसका समय सैरुलकूल के अनुसार हज़रत मुहम्मद साहिब से तीन सौ वर्ष पूर्व और उक्त लेख (पत्रों) में उनसे चार सौ वर्ष पूर्व दिया हुआ है। इसमें कवि ने अपने सच्चे भगवान की आराधना की है और उसके अद्‌भुत कार्यों और अद्वितीय शक्तियों की स्तुति की है। इन शेरों से यह पता तो नहीं चलता कि अरब निवासी उस देवता का किस नाम से स्मरण करते थे किन्तु कसीदे में जिन गुणों, शक्तियों एवं अद्‌भुत कार्यों का वर्णन किया गया है वे सब भारतवासियों के लिये कोई नई और अनोखी बात नहीं है क्योंकि कोई हिन्दू बच्चा भी इन सब बातों

को सुनकर तत्काल यह बता सकता है कि भारतवासी ये गुण किस देवता में मानते हैं। किन्तु यह स्मरण रहे कि उक्त कवि महोदय ने उसको ईश्वर (खुदा) मानकर उसका वर्णन किया है। कवि ने यह भी माना है कि मानव के दुख हरण के लिये और नास्तिकता के विनाश के लिये मानव रूप में उसका अवतरण होता है। वह कहता है-

जा इनाबिल् अम्रे मुकर्रमतुन फ़िद्दनिया इलस्समाए
व मुखज़िल काफिरीना कमा यकूलून फ़िलकिताबन

हे मेरे स्वामी आपने अपनी असीम कृपा से जो इस संसार के लिये अवतार लिया जबकि पापियों ने इस पर कब्जा कर रखा था, जैसा कि आपने स्वयं अपने ग्रन्थ में कहा है।

आयैन आयैन तबअरत दीन-अस्सादिक़ फ़िल-इन्स
जाअत तबर्रल मूमिनीना व तत्तख़िज़लकाफिरीन शदीदन

जब जब संसार में धर्म की कमी होती है और पाप बढ़ जाता है तब तब भक्तों की रक्षा और पापियों को दण्ड देने के लिये मैं जन्म लेता हूँ।

रब्बना मुबारका बलदतुन नुज़िल्त मसरूरततुन
व ताकुलल अर्ज़ा बक़रतुन फ़ी उतुब्बि मसरूरन

हे प्रभो, वह नगर धन्य है जहां आपने जन्म लिया और वह भूमि (धन्य है) जहां आप गौ चराते हुए अपने मित्रों के साथ खेला करते थे।

वल हुना फ़िस्सूरत अल-मलीह कमा जिइना फ़िस्सूरत बहुस्नि
नयना तत्तख़िज़ी यदिहा फ़िस्समाइ लाक़रारा मसीहा

आपकी सांवली सूरत देखकर ऐसा मालूम होता है कि साक्षात् सौन्दर्य की प्रतिमा

मानवदेह में प्रकट हुई है। जब आप बांसुरी बजाते हैं तो उसकी मनोहर और सुरीली धुन पुरुषों और स्त्रियों को अपना भक्त बना लेती है।

रऐतु जमाली इलाहतुन फ़िलमलबूसे यदाहु नयना
राअसहु हुल्ली फ़िज़्ज़ुन मिनल इन्सि मसरूरा

हे ईश्वर, एक बार मुझे भी अपना रूप दिखा दो जब कि आपने पीताम्बर पहना हुआ हो और हाथ में बांसुरी हो, सिर पर ताज कानों में कुण्डल हो जिस रूप को देखकर दुनिया आनन्द विभोर हो जाती है।

वजन्नतल हूर तनजी व तत्तख़िज़ा बिललैनाते जबलुन
व लि इबाद स्साहिलीन-अल-हुब्बि हल कुन्तु मसरूरा

हे प्रभो,, आपने अपने पवित्र चरणों की ठोकर से स्वर्ग की अप्सरा को मोक्ष प्रदान किया था और अंगुली पर पर्वत उठाया था। भक्तों और मित्रों के लिये सब कुछ किया था। क्या हमें वंचित रखोगे?

उपर्यक्त शेरों से पाठकों को यह समझने में सम्भवतः किसी प्रकार का भी शक या सन्देह नहीं रहा होगा कि ये शेर किस देवता या अवतार का गुणगान करते हैं, और कवि ने इनमें क्या प्रार्थना की है, क्योंकि कसीदे में जिन बातों का वर्णन किया गया है वह वर्णन इतना स्पष्ट और सीधा है कि उसमें किसी सन्देह की सम्भावना रहती ही नहीं, और अनायास हृदय से ये शब्द निकल पड़ते हैं कि यह स्तुति भगवान श्री कृष्ण चन्द्र के सिवाय और किसी की हो ही नहीं सकती। यद्यपि कवि ने अपनी कविता में किसी नाम का उल्लेख नहीं किया है तथापि उक्त गुणों से सम्पन्न देव कृष्ण जी के अतिरिक्त और कोई देवता नहीं हो सकता क्योंकि आज के समय में भी भारत में श्री कृष्ण जी यही का रूप माना जाता है।

इन उपर्युक्त शेरों से यह प्रमाणित हो जाता है कि हज़रत मुहम्मद से चार सौ वर्ष पूर्व अरब निवासियों के अन्दर ईश्वर के मानवदेह में अवतार लेने का विचार

पक्का हो चुका था। यद्यपि इससे हजारों वर्ष पूर्व के कसीदों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वेद ईश्वरीय ज्ञान है और उनकी शिक्षा का अनुसरण करने से ही मोक्ष प्राप्ति हो सकती है, किन्तु यह सिलसिला यहीं पर समाप्त नहीं हुआ, बल्कि हज़रत मुहम्मद साहिब से सौ वर्ष पूर्व के कवियों ने मांस और मदिरा को स्वर्ग प्राप्ति का उत्तम उपाय माना है और देवताओं की पूजा को ही ईश्वर भक्ति बतला कर पशुबलि, रुधिर और मांस को ही देवी के लिये प्रियतम उपहार ठहरा दिया है। साथ में मदिरा को देवी की पूजा का अनिवार्य अंग भी ठहरा दिया है। इन सब बातों से यह स्पष्ट जो जाता है कि हज़रत मुहम्मद साहिब के निकटवर्ती समय में अरब पूरे तौर से वाम मार्ग का घर बन चुका था और मद्यपान और मांसभक्षण की अधिकता ने उनको इतना निर्बल बना दिया था कि उनमें कई चारित्रिक और सामाजिक बुराइयां पैदा हो चुकी थीं। ऐसे समय में हज़रत मुहम्मद साहिब का जन्म हुआ। आपने अरब निवासियों के सामने क्या विचार रखे और किन सिद्धान्तों का प्रचार किया अब इन प्रश्नों का उत्तर देना शेष रह जाता है। इस समस्या को हम दूसरे ट्रेक्ट के द्वारा पाठकों के सामने रखेंगे। क्योंकि लोग बहुधा यह प्रश्न करते हैं कि जब अरब निवासी आर्य और हिन्दू संस्कृति और सभ्यता में विश्वास रखते थे तो फिर क्या कारण है कि भारत देश से निकले हुए धर्म पर आर्य सभ्यता और हिन्दू धर्म के स्थान पर सेमिटिक सभ्यता और यहूदी और ईसाई धर्म का प्रबल प्रभाव पड़ा। यदि अरब निवासी हिन्दू थे तो इस्लाम मज़हब पर हिन्दू सभ्यता और संस्कृति की मुहर का होना आवश्यक था जैसे कि बौद्धों, जैनियों, सिक्खों इत्यादि पर है। किन्तु है इसके विपरीत, क्योंकि इस्लाम और मुसलमानों का संबंध यहूदियों और ईसाईयों से निकट है। कुरान शरीफ में पृष्ठ के पृष्ठ पुराने ईसाई ग्रन्थ से नकल किये गये हैं। इन सब प्रश्नों का समाधान आपको दूसरे ट्रेक्ट में मिलेगा जिससे मालूम हो जायेगा कि हज़रत मुहम्मद साहिब वैदिक शिक्षा के कितने निकट थे, उन्होंने किन सिद्धान्तों को अरब निवासियों के सामने पेश किया था, और फिर कैसे यहूदी और नसारी के प्रभाव के अन्तर्गत कैसे सारे का सारा नक्शा एकदम बदल गया। ये सारी बातें एक नई खोज के प्रकाश में जो अब से पहले छिपी हुई थी आपके सामने पेश की जायेंगी।

सामन पश किया था, और फिर कैसे यहूदी और नसारी के प्रभाव के अन्तर्गत कैसे